संस्कृत साहित्य सौरभ

विक्रमोर्वशी

Gandhi Smarak Nidhi
Karnatak Circle
138, Nehru Street
BANGALORE-3

015,2D40
152W3N57;1
H.000700

ATTVA PRACHAR
BANGALORE

000700

संस्कृत-साहित्य-सौरभ

१६

कालिदास-कृत

विक्रमोर्वशी

GANDHI SMARAKA GRANTHALAYA
DATE.....
ACC. No. 9583
CALL No.....
BANGALORE-1.

श्री विष्णु प्रभाकर

द्वारा

कथासार

विष्णु प्रभाकर

द्वारा

संपादित

ಕರ್ನಾಟಕ ಗಾಂಧೀ ಸ್ಮಾರಕ ನಿಧಿ (ರಿ)
ಪರಿಗ್ರಹಣ ಸಂಖ್ಯೆ:
ACC. No.: ೧೬೫೨
ಗಾಂಧೀ ಗ್ರಂಥಾಲಯ, ಬೆಂಗಳೂರು-1

सत्साहित्य-प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

SMARAKA GRANTHALAYA
DATE.....
ACC. NO.....
CALL NO.....
BANGALORE-1.

H.000700
015,2 D40
159W3N57:1

दूसरी बार : १९५७
मूल्य
छः आना

मुद्रक
हिंदी प्रिंटिंग प्रेस
दिल्ली

GANDHI SMARAKA GRANTHALAYA
DATE.....
ACC. NO.....
CALL NO.....
BANGALORE

संस्कृत-साहित्य-सौरभ

हमारा संस्कृत-साहित्य अत्यंत समृद्ध है। भारतीय जीवन का शायद ही कोई ऐसा अंग हो, जिसके संबंध में मूल्यवान सामग्री का अनंत भंडार संस्कृत-साहित्य में उपलब्ध न हो। लेकिन खेद की बात है कि संस्कृत से अपरचित होने के कारण हिंदी के अधिकांश पाठक उससे अनभिज्ञ हैं। उनमें जिज्ञासा है कि वे उस साहित्य से परिचय प्राप्त करें; परंतु उसका रस वे हिंदी के द्वारा लेना चाहते हैं।

पाठकों की इसी जिज्ञासा को देखकर बहुत समय पहले हमने विचार किया था कि संस्कृत के प्रमुख कवियों, नाटककारों आदि की विशिष्ट रचनाओं की छोटी-छोटी कथाओं के रूप में हम हिंदी में प्रस्तुत कररहे हैं।

पुस्तकों की भाषा बहुत सरल बनाने का प्रयत्न किया गया है। पाठकों की सुविधा के लिए टाइप भी मोटा लगाया गया है।

इन पुस्तकों का संपादन हिंदी के सुलेखक श्री विष्णु प्रभाकर ने बड़े परिश्रम से किया है।

इस माला में कई पुस्तकें निकल चुकी हैं। आशा है, हिंदी के पाठकों को इन पुस्तकों से संस्कृत-साहित्य की महान् रचनाओं की कुछ-न-कुछ झांकी अवश्य मिल जायगी। पूरा रसास्बादन तो मूल ग्रंथ पढ़कर ही हो सकेगा। यदि इन पुस्तकों के अध्ययन से मूल पुस्तकें पढ़ने की प्रेरणा हुई तो हम अपने परिश्रम को सफल समझेंगे।

दूसरा संस्करण

इस माला की पुस्तकें बहुत ही लोकप्रिय हो रही हैं और हमें हर्ष है कि कुछ पुस्तकों का चंद महीनों में दूसरा संस्करण प्रकाशित हो रहा है। आशा है कि भारतीय संस्कृति और साहित्य के प्रेमी पाठक इन पुस्तकों और भी चाव से अपनायेंगे।

— मंत्री

भूमिका

कालिदास के तीन नाटक प्रसिद्ध हैं—मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशी और शकुंतला। इनमें से पहले और तीसरे नाटक का कथासार हम इस माला में प्रस्तुत कर चुके हैं। विक्रमोर्वशी कालक्रम से मालविकाग्निमित्र के बाद लिखा गया माना जाता है। इस नाटक या त्रोटक में चंद्रवंश के प्रतापी महाराज पुरुरवा और देवलोक की अप्सरा उर्वशी के प्रेम और वियोग का वर्णन है। इस कथा का वर्णन वेद और ब्राह्मण-ग्रंथों में आया है। आर्यों के प्राचीन इतिहास पर इससे अच्छा प्रकाश पड़ता है। पुरुरवा और उर्वशी के पुत्र आयु से ही आर्यों की चंद्रवंशी शाखा आगे चली है।

इसी प्राचीन कथा को लेकर कवि ने इस नाटक की रचना की है। कवि की अद्भुत कल्पना-शक्ति ने इस साधारण-सी कथा में वह रस पैदा किया है कि पाठक आनंद से विभोर हो उठता है। क्या रस, क्या भाषा-सौंदर्य, क्या संगीत सभी दृष्टियों से यह एक सफल रचना है। संगीत इस नाटक की विशेषता है। यह नाटक शकुंतला के समान महान् रचना नहीं है; लेकिन पात्रों की सूक्ष्म-से-सूक्ष्म मनोभावनाओं को संगीत-विज्ञान के साथ प्रकट करने में जो सफलता कवि को मिली है, वह भी साधारण नहीं है।

जैसाकि इस माला की दूसरी पुस्तकों की भूमिका में लिखा जा चुका है, कालिदास के समय और जन्म-स्थान के बारे में बहुत मतभेद है। इनका समय विक्रमी संवत् की नवम् शताब्दी से लेकर ईसा की छठी शताब्दी तक माना जाता है। पर वह कभी हुए हों, कहीं हुए हों, उनका नाम अमर है और उनका स्थान वाल्मीकि और व्यास की परंपरा में है।

—संपादक

GANDHI SMARAKA GRANTHALAYA
DATE.....
ACC. NO.....
CALL NO.....
BANGALORE-1.

विक्रमोर्वशी

: १ :

एक बार देवलोक की परम सुंदरी अप्सरा उर्वशी अपनी सखियों के साथ कुबेर के भवन से लौट रही थी। मार्ग में केशी दैत्य ने उन्हें देख लिया और तब उसे उसकी सखी चित्रलेखा सहित वह बीच रास्ते से ही पकड़ कर ले गया। यह देखकर दूसरी अप्सराएं सहायता के लिए पुकारने लगीं, "आर्यो ! जो कोई भी देवताओं का मित्र हो और आकाश में आ-जा सके, वह आकर हमारी रक्षा करे।" उसी समय प्रतिष्ठान देश के राजा पुरुरवा भगवान् सूर्य की उपासना करके उधर से ही लौट रहे थे। उन्होंने यह करुण पुकार सुनी तो तुरंत अप्सराओं के पास जा पहुंचे। उन्हें ढाढ़स बंधाया और जिस ओर वह दुष्ट दैत्य उर्वशी को ले गया था, उसी ओर अपना रथ हांकने की आज्ञा दी। अप्सराएं जानती थीं कि पुरुरवा चंद्रवंश के प्रतापी राजा हैं और जब-जब देवताओं की विजय के लिए युद्ध करना होता है तब-तब इंद्र इन्हींको, बड़े आदर

के साथ बुलाकर अपना सेनापति बनाते हैं। इस बात से उन्हें बड़ा संतोष हुआ और वे उत्सुकता से उनके लौटने की राह देखने लगीं।

उधर राजा पुरुरवा ने बहुत शीघ्र ही राक्षसों को मार भगाया और उर्वशी को लेकर वह अप्सराओं की ओर लौट चले। लेकिन रास्ते में जब उर्वशी को होश आया और उसे पता लगा कि वह राक्षसों की कैद से छूट गई है, तो वह समझी कि यह काम इंद्र का है। परंतु चित्रलेखा ने उसे बताया कि यह राजा पुरुरवा की कृपा से मुक्त हुई है। यह सुनकर उर्वशी ने सहसा राजा की ओर देखा, उसका मन पुलक उठा। राजा भी इस अनोखे रूप को देखकर मन-ही-मन उसे सराहने लगे।

अप्सराएं उर्वशी को फिर से अपने बीच में पाकर बड़ी प्रसन्न हुईं और गद्गद् होकर राजा के लिए मंगल कामना करने लगीं, "महाराज सैकड़ों कल्पों तक पृथ्वी का पालन करते रहें।" इसी समय गंधर्वराज चित्ररथ वहां आ पहुंचे। उन्होंने बताया कि जब इंद्र को नारद से इस दुर्घटना का पता लगा, तो उन्होंने गंधर्वों की सेना को आज्ञा दी, "तुरंत जाकर उर्वशी को छुड़ा लाओ।" वे चले लेकिन मार्ग में ही चारण मिल गये, जो

राजा पुरुरवा की विजय के गीत गा रहे थे। इसलिए वह भी उधर चले आये। पुरुरवा और चित्ररथ पुराने मित्र थे। बड़े प्रेम से मिले। चित्ररथ ने उनसे कहा, "अब आप उर्वशी को लेकर हमारे साथ देवराज इंद्र के पास चलिए। सचमुच आपने उनका बड़ा भारी उपकार किया है।" लेकिन विनयी राजा ने इस बात को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने इसे इंद्र की कृपा ही माना। बोले, "मित्र! इस समय तो मैं देवराज इंद्र के दर्शन नहीं कर सकूंगा। इसलिए आप ही इन्हें स्वामी के पास पहुंचा आइए।"

चलते समय लाज के कारण उर्वशी राजा से विदा नहीं मांग सकी। उसकी आज्ञा से चित्रलेखा को ही यह काम करना पड़ा, "महाराज! उर्वशी कहती है कि महाराज की आज्ञा से मैं उनकी कीर्ति को अपनी सखी बनाकर इंद्रलोक ले जाना चाहती हूं।" राजा ने उत्तर दिया, "जाइए परंतु फिर दर्शन अवश्य दीजिए।"

उर्वशी जा रही थी, पर उसका मन उसे पीछे खींच रहा था। मानो उसकी सहायता करने के लिए ही उसकी वैजयंती की माला लता में उलझ गई। उसने चित्रलेखा से सहायता की प्रार्थना की और अपने आप

पीछे मुड़कर राजा की ओर देखने लगी। चित्रलेखा सब कुछ समझती थी। बोली, "यह तो छूटती नहीं दिखाई देती, फिर भी कोशिश कर देखती हूं।" उर्वशी ने हँसते हुए कहा, "प्यारी सखी। अपने ये शब्द याद रखना। भूलना मत।"

राजा का मन भी उधर ही लगा हुआ था। जब-तक वे सब उड़ न गईं, तबतक वह उधर ही देखते रहे। उसके बाद बरबस रथ पर चढ़कर वह भी अपनी राजधानी की ओर लौट गए।

: २ :

महाराज राजधानी लौट तो आये; पर मन उनका किसी काम में नहीं लगता था। वह अनमने-से रहते थे। उनकी रानी ने भी, जो काशीनरेश की कन्या थी, इस उदासी को देखा और अपनी दासी को आज्ञा दी कि वह राजा के मित्र विदूषक माणवक से इस उदासी का कारण पूछकर आये। दासी का नाम निपुणिका था। वह अपने काम में भी निपुण थी। उसने बहुत शीघ्र इस बात का पता लगा लिया कि महाराज की इस उदासी का कारण उर्वशी है। विदूषक के पेट में

राजा के गुप्त प्रेम की बातें भला कैसे पच सकती थीं। यही नहीं, रानी का भला बनने के लिए उसने यह भी कहा कि वह राजा को इस मृगतृष्णा से बचाने के लिए कोशिश करते-करते थक गया है। यह समाचार देने के लिए निपुणिका तुरंत महारानी के पास चली गई और विदूषक डरता-डरता महाराज के पास पहुंचा। तीसरे पहर का समय था। राजकाज से छुट्टी पाकर महाराज विश्राम के लिए जा रहे थे। मन उनका उदास था ही। विदूषक परिहासादि से अनेक प्रकार उनका मन बहलाने की कोशिश करने लगा, पर सब व्यर्थ हुआ। प्रमद वन में भी उनका मन नहीं लगा। जी उलटा भारी हो आया। उस समय वसंत ऋतु थी। आम के पेड़ों में कोंपलें फूट आई थीं। कुरबक और अशोक के फूल खिल रहे थे। भौंरों के उड़ने से जगह-जगह फूल बिखरे पड़े थे; लेकिन उर्वशी की सुंदरता ने उनपर कुछ ऐसा जादू कर दिया था कि उनकी आंखों को फूलों के भार से झुकी हुई लताएं और कोमल पौधे भी अच्छे नहीं लगते थे। इसलिए उन्होंने विदूषक से कहा, "कोई ऐसा उपाय सोचो कि मेरे मन की साध पूरी हो सके।"

विदूषक ऐसा उपाय सोचने का नाटक कर

ही रहा था कि अच्छे शकुन होने लगे और चित्रलेखा के साथ उर्वशी ने वहां प्रवेश किया। उन्होंने माया के वस्त्र ओढ़ रखे थे, इसलिए उन्हें कोई देख नहीं सकता था, वे सबको देख सकती थीं। जब प्रमद वन में उतर-कर उन्होंने राजा को बैठे देखा तो चित्रलेखा बोली, "सखी ! जैसे नया चांद चांदनी की राह देखता है वैसे ही ये भी तेरे आने की बाट जोह रहे हैं।" उर्वशी को उस दिन राजा पहले से भी सुंदर लगे।

लेकिन उन्होंने अपने-आपको प्रगट नहीं किया। महाराज के पास खड़े होकर उनकी बातें सुनने लगीं। विदूषक तब उन्हें अपने सोचे हुए उपाय के बारे में बता रहा था। बोला, "या तो आप सो जाइए, जिससे सपने में उर्वशी से भेंट हो सके। या फिर चित्र-फलक पर उसका चित्र बनाइए और उसे एकटक देखते रहिए।" राजा ने उत्तर दिया कि ये दोनों ही बातें नहीं हो सकतीं। मन इतना दुखी है कि नींद आ ही नहीं सकती। आंखों में बार-बार आंसू आ जाने के कारण चित्र का पूरा होना भी संभव नहीं है।

इसी तरह की बातें सुनकर उर्वशी को विश्वास हो गया कि महाराज उसीके प्रेम के कारण इतने दुखी

हैं; पर वह अभी प्रगट नहीं होना चाहती थी। इसलिए उसने भोजपत्र पर महाराज की शंकाओं के उत्तर में एक प्रेमपत्र लिखा और उनके सामने फेंक दिया। महाराज ने उस पत्र को पढ़ा तो पुलक उठे। उन्हें लगा जैसे वे दोनों आमने-सामने खड़े होकर बातें कर रहे हैं। कहीं वह पत्र उनकी उंगलियों के पसीने से पुछ न जाय, इस डर से उसे उन्होंने विदूषक को सौंप दिया। उर्वशी को यह सब देख-सुनकर बड़ा संतोष हुआ; पर वह अब भी सामने आने में झिझक रही थी। इसलिए पहले उसने चित्रलेखा को भेजा। पर जब महाराज के मुंह से उसने सुना कि दोनों ओर प्रेम एक-जैसा ही बढ़ा हुआ है तो वह भी प्रगट होगई। आगे बढ़कर उसने महाराज का जय-जयकार किया। महाराज उर्वशी को देखकर बड़े प्रसन्न हुए; लेकिन अभी वे दो बातें भी नहीं कर पाये थे कि उन्होंने एक देवदूत का स्वर सुना। वह कह रहा था, "चित्रलेखा! उर्वशी को शीघ्र ले आओ। भरत मुनि ने तुम लोगों को आठों रसों से पूर्ण जिस नाटक की शिक्षा दे रखी है, उसीका सुंदर अभिनय देवराज इंद्र और लोक-पाल देखना चाहते हैं।"

यह सुनकर चित्रलेखा ने उर्वशी से कहा, "तुमने

देवदूत के वचन सुने। अब महाराज से विदा लो।" लेकिन उर्वशी इतनी दुखी हो रही थी कि बोल न सकी। चित्रलेखा ने उसकी ओर से निवेदन किया, "महाराज, उर्वशी प्रार्थना करती है कि मैं पराधीन हूं। जाने के लिए महाराज की आज्ञा चाहती हूं, जिससे देवताओं का अपराध करने से बच सकूं।"

महाराज भी दुखी हो रहे थे। बड़ी कठिनता से बोल सके, "भला मैं आपके स्वामी की आज्ञा का कैसे विरोध कर सकता हूं, लेकिन मुझे भूलिएगा नहीं।"

महाराज की ओर बार-बार देखती हुई उर्वशी अपनी सखी के साथ वहां से चली गई। उसके जाने के बाद विदूषक को पता लगा कि महाराज ने उसे उर्वशी का जो पत्र रखने को दिया था वह कहीं उड़ गया है। वह डरने लगा कि कहीं महाराज उसे मांग न बैठें। यही हुआ भी। पत्र न पाकर महाराज बड़े क्रुद्ध हुए और तुरंत उसे ढूंढ़ने की आज्ञा दी। यही नहीं वह स्वयं भी उसे ढूंढ़ने लगे।

इसी समय महारानी अपनी दासियों के साथ उधर ही आ रही थी। उन्हें उर्वशी के प्रेम का पता लग गया था। वह अपने कानों से महाराज की बातें सुन-

कर इस बात की सच्चाई को परखना चाहती थी। मार्ग में आते समय उन्हें उर्वशी का वही पत्र उड़ता हुआ मिल गया। उसे पढ़ने पर सब बातें उनकी समझ में आगईं। उस पत्र को लेकर जब वह महाराज के पास पहुंची तो वे दोनों बड़ी व्यग्रता से उसे खोज रहे थे। महाराज कह थे कि मैं तो सब प्रकार से लुट गया। यह सुनकर महारानी एकाएक आगे बढ़ीं और बोलीं, "आर्यपुत्र ! घबराइए नहीं। वह भोजपत्र यह रहा !"

महारानी को और उन्हींके हाथ में उस पत्र को देखकर महाराज और भी घबरा उठे; लेकिन किसी तरह अपनेको संभालकर उन्होंने महारानी का स्वागत किया और कहा, "मैं इसे नहीं खोज रहा था, देवी। मुझे तो किसी और ही वस्तु की तलाश थी।" विदूषक ने भी अपने विनोद से उन्हें प्रसन्न करने का प्रयत्न किया, लेकिन वह क्यों माननेवाली थीं। बोली, "मैं ऐसे समय में आपके काम में बाधा डालने आगई। मैंने अपराध किया। लीजिए मैं चली जाती हूं।" और वह गुस्से में भरकर लौट चलीं। महाराज पीछे-पीछे मनाने के लिए दौड़े। पैर तक पकड़े, पर महारानी इतनी भोली नहीं थीं कि महाराज की इन चिकनी-

GANDHI SMARAKA GRANTHALAYA
BANGALORE-1.

चुपड़ी बातों में आ जाती। लेकिन पतिव्रता होने के कारण उन्होंने कोई कड़ा बर्ताव भी नहीं किया। ऐसा करती तो पछताना पड़ता। बस वह चली गईं। महाराज भी अधीर होकर स्नान-भोजन के लिए चले गये। वह महारानी को अब भी पहले के समान ही प्यार करते; लेकिन जब वह हाथ-पैर जोड़ने पर भी नहीं मानीं तो वह भी क्रुद्ध हो उठे।

: ३ :

देवसभा में भरत मुनि ने लक्ष्मी-स्वयंवर नाम का जो नाटक खेला था, उसके गीत स्वयं सरस्वती देवी ने बनाये थे। उसमें रसों का परिपाक इतना सुंदर हुआ था कि देखते समय पूरी-की-पूरी सभा मगन हो उठती थी। लेकिन उस नाटक में उर्वशी ने बोलने में एक बड़ी भूल कर दी। जिस समय वारुणी बनी हुई मेनका ने, लक्ष्मी बनी हुई उर्वशी से पूछा, "सखी! यहांपर तीनों लोक के एक से एक सुन्दर पुरुष, लोक-पाल और स्वयं विष्णु भगवान आये हुए हैं, इनमें तुम्हें कौन सबसे अधिक अच्छा लगता है?" उस समय उसे कहना चाहिए था 'पुरुषोत्तम'; पर उसके मुंह से निकल

गया 'पुरुख'। इसपर भरत मुनि ने उसे शाप दिया, "तूने मेरे सिखाए पाठ के अनुसार काम नहीं किया है, इसलिए तुझे यह दंड दिया जाता है कि तू स्वर्ग में नहीं रहने पावेगी।"

लेकिन नाटक के समाप्त हो जाने पर जब उर्वशी लज्जा से सिर नीचा किये खड़ी थी, तो सबके मन की बात जाननेवाले इंद्र उसके पास गये और बोलो, "जिसे तुम प्रेम करती हो, वह राजर्षि रणक्षेत्र में सदा मेरी सहायता करनेवाला है। कुछ उसका प्रिय भी करना ही चाहिए। इसलिए जबतक वह तुम्हारी संतान का मुंह न देखे, तबतक तुम उसके साथ रह सकती हो।"

इधर काशीराज की कन्या महारानी ने मान छोड़-कर एक व्रत करना शुरू किया और उसे सफल करने के लिए महाराज को बुला भेजा। कंचुकी यह संदेश लेकर जब महाराज के पास पहुंचा तो संध्या हो चली थी। राजद्वार बड़ा सुहावना लग रहा था। नींद में अलसाये हुए मोर ऐसे लगते थे जैसे किसी कुशल मूर्तिकार ने उन्हें पत्थर में अंकित कर दिया हो। जगह जगह संध्या के पूजन की तैयारी हो रही थी। दीप

सजाये जा रहे थे। अनेक दासियां दीपक लिये महाराज के चारों ओर चली आ रही थीं। इसी समय कंचुकी ने आगे बढ़कर महाराज की जय-जयकार की और कहा, "देव, देवी निवेदन करती हैं कि चंद्रमा मणिहर्म्य-भवन से अच्छी तरह दिखाई देगा। इसलिए मेरी इच्छा है कि महाराज के साथ मैं वही से चंद्रमा और रोहिणी का मिलन देखूं।" महाराज ने उत्तर दिया, "देवी से कहना कि जो वह कहेंगी वह मैं करूंगा।"

यह कहकर वह विदूषक के साथ मणिहर्म्य-भवन की ओर चल पड़े। चंद्रमा उदय हो रहा था। उसे प्रणाम करके वे वहीं बैठ गये और उर्वशी के बारे में बातें करने लगे। उसी समय माया के वस्त्र ओढ़े उर्वशी भी चित्रलेखा के साथ उसी भवन की छत पर उतरी और उनकी बातें सुनने लगी; लेकिन जब वह प्रगट होने का विचार कर रही थी, तभी महारानी के आने की सूचना मिली। वह पूजा की सामग्री लिये और व्रत की वेशभूषा में अति सुंदर लग रही थीं। महाराज ने सोचा कि उस दिन मेरे मनाने पर भी जो रूठकर चली गई थी, उसीका पछतावा महारानी को ही रहा है। व्रत के बहाने यह मान छोड़कर मुझपर

प्रसन्न होगई हैं ।

महारानी ने आगे बढ़कर महाराज की जय-जय-कार की और कहा, "मैं आर्यपुत्र को साथ लेकर एक विशेष व्रत करना चाहती हूं, इसलिए प्रार्थना है कि आप मेरेलिए कुछ देर कष्ट सहने की कृपा करें।" महाराज ने उत्तर में ऐसे प्रिय वचन कहे कि जिन्हें सुनकर महारानी मुस्करा उठीं। उन्होंने सबसे पहले गंध-फूलादि से चंद्रमा की किरणों की पूजा की, फिर पूजा के लड्डू विदूषक को देकर महाराज की पूजा की। उसके बाद बोलीं, "आज मैं रोहिणी और चंद्रमा को साक्षी करके आर्यपुत्र को प्रसन्न कर रही हूं। आज से आर्यपुत्र जिस किसी स्त्री की इच्छा करेंगे और जो भी स्त्री आर्यपुत्र की पत्नी बनना चाहेगी, उसके साथ मैं सदा प्रेम करूंगी।"

यह सुनकर उर्वशी को बड़ा संतोष हुआ। महाराज बोले, "देवी ! मुझे किसी दूसरे को दे दो या अपना दास बनाकर रखो; पर तुम मुझे जो दूर समझ बैठी हो वह ठीक नहीं है।" महारानी ने उत्तर दिया, "दूर हो या न हो, पर मैंने जो व्रत करने का निश्चय किया था वह पूरा हो चुका है।"

यह कहकर वह दास-दासियों के साथ वहां से चली गईं। महाराज ने रोकना चाहा; पर व्रत के कारण वह रुकीं नहीं। उनके जाने के बाद महाराज फिर उर्वशी की याद करने लगे। उदार-हृदय पतिव्रता महारानी की कृपा से अब उनके मिलने में जो रुकावट थी वह भी दूर हो चुकी थी। उर्वशी ने, जो अबतक सबकुछ देख-सुन रही थी, इस सुंदर अवसर से लाभ उठाया और वह प्रकट होगई। उसने चुपचाप पीछे से आकर महाराज की आंखें मींच लीं। महाराज ने उसको तुरंत पहचान लिया और अपने ही आसन पर बैठा लिया। तब उर्वशी ने अपनी सखी से कहा, "सखी! देवी ने महाराज को मुझे दे दिया है, इसलिए मैं इनकी विवाहिता स्त्री के समान ही इनके पास बैठी हूं। तुम मुझे दुराचारिणी मत समझ बैठना।"

चित्रलेखा ने भी महाराज से अपनी सखी की भली प्रकार देखभाल करने की प्रार्थना की, जिससे वह स्वर्ग जाने के लिए घबरा न उठे। फिर सबसे मिल-भेंटकर वह स्वर्ग लौट गई।

इस प्रकार महाराज का मनोरथ पूरा हुआ। खुशी-खुशी वह भी विदूषक और उर्वशी के साथ वहां से अपने महल की ओर चले गये।

: ४ :

उर्वशी के आने के बाद महाराज पुरुरवा ने राज-काज मंत्रियों को सौंप दिया और स्वयं गंधमादन पर्वत पर चले गये। उर्वशी साथ ही थी। वहां वे बहुत दिन तक आनंद मनाते रहे। एक दिन उर्वशी मंदाकिनी के तट पर बालू के पहाड़ बना-बनाकर खेल रही थी कि अचानक उसने देखा—महाराज एक विद्याधर की परम सुंदरी बेटी की ओर एकटक देख रहे हैं। बस वह इसी बात पर रूठ गई और रूठी भी ऐसी कि महाराज के बार-बार मनाने पर भी नहीं मानी। उन्हें छोड़ कर चली गई। वहां से चलकर वह कुमार वन में आई। इस वन में स्त्रियों को आने की आज्ञा नहीं थी। ब्रह्मचर्य का व्रत लेकर भगवान कार्त्तिकेय यहां रहते थे। उन्होंने यह नियम बना दिया था कि जो भी स्त्री यहां आयगी वह लता बन जायगी। इसलिए जैसे ही उर्वशी ने उस वन में प्रवेश किया, वह लता बन गई।

इधर महाराज उसके वियोग में पागल ही होगये और अपने मन की व्यथा प्रकट करते हुए इधर-उधर घूमने लगे। कभी वह समझते कि कोई राक्षस उर्वशी

को उठाये लिये जा रहा है। बस वह उसे ललकारते; लेकिन तभी उन्हें पता लगता कि जिसे वह राक्षस समझ बैठे थे कि वह तो पानी से भरा हुआ बादल है। उन्होंने इंद्रधनुष को गलती से राक्षस का धनुष समझ लिया है। ये वाण नहीं बरस रहे हैं, बूंदें टपक रही हैं और वह जो कसौटी पर सोने की रेखा के समान चमक रही है, वह भी उर्वशी नहीं है, बिजली है।

कभी सोचते, कहीं क्रोध में आकर वह अपने दैवी प्रभाव से छिप तो नहीं गई या कहीं स्वर्ग तो नहीं चली गई। कभी हरी घास पर पड़ी हुई बीरबहूटियों को देखकर यह समझते कि ये उसके ओठों के रंग से लाल हुए आंसुओं की बूंदें हैं। अवश्य वह इधर से ही गई है। कभी वह मोर को देखकर उससे उर्वशी का पता पूछते, "अरे मोर ! मैं तुमसे प्रार्थना करता हूं कि अगर घूमते-फिरते तुमने मेरी पत्नी को देखा हो तो मुझे बता दो।"

लेकिन मोर उत्तर न देकर नाचने लगता। महाराज उसके पास से हटकर कोयल के पास जाते। पक्षियों में कोयल सबसे चतुर समझी जाती है। उसके आगे घुटने टेककर वह कहते, "हे मीठा बोलनेवाली

सुंदर कोयल ! यदि तुमने इधर-उधर घूमती हुई उर्वशी को देखा हो तो बता दो। तुम तो रूठी हुई स्त्रियों का मान दूर करनेवाली हो। तुम या तो उसे मेरे पास ले आओ या झटपट मुझे ही उसके पास पहुंचा दो। क्या कहा तुमने ? वह मुझसे क्यों रूठ गई है। मुझे तो एक भी बात ऐसी याद नहीं आती कि जिस-पर वह रूठी हो। अरे, स्त्रियां तो वैसे ही अपने पतियों पर शासन जमाया करती हैं। यह जरूरी नहीं कि पति कोई अपराध ही करे तभी वे क्रोध करेंगी।"

लेकिन कोयल भी इन बातों का क्या जवाब देती ! वह अपने काम में लगी रहती। दूसरे का दुख लोग कम समझते हैं। राजा कहते, "अच्छा बैठी रहो सुख से ! हम ही यहां से चले जाते हैं।"

फिर सहसा उन्हें दक्खिन की ओर बिछुओं की सी झनझन सुनाई देती। लेकिन पता लगता वह तो राजहंसों की कूक है जो बादलों की अंधियारी देख-कर मानसरोवर जाने को उतावले हो रहे हैं। वह उनके पास जाकर कहते, "तुम मानसरोवर बाद में जाना। ये जो तुमने कमलनाल संभाली हैं, इन्हें भी अभी छोड़ दो। पहले तुम मुझे उर्वशी का समाचार

बताओ। सज्जन लोग अपने मित्रों की सहायता करना अपने स्वार्थ से बढ़कर अच्छा समझते हैं। हे हंस ! तुम तो ऐसे ही चलते हो, जैसे उर्वशी चलती है। तुमने उसकी चाल कहां से चुराई। अरे, तुम तो उड़ गये। (हँसकर) तुम समझ गये कि मैं चोरों को दंड देनेवाला राजा हूं। अच्छा चलूं, कहीं और खोजूं...।"

फिर वह चकवे के पास जा पहुंचते। उससे वही प्रश्न करते, लेकिन उन्हें लगता जैसे चकवा उनसे पूछ रहा है—"तुम कौन हो ?" वह कहते, "अरे, तुम मुझे नहीं जानते ? सूर्य मेरे नाना और चंद्रमा मेरे दादा हैं। उर्वशी और धरती ने अपने-आप मुझे अपना स्वामी बनाया है। मैं वही पुरुरवा हूं।" लेकिन चकवा भी चुप रहता। महाराज वहां से हटकर कमल पर मंडराते हुए भौरों से पूछने लगते। पर वे भी क्या जवाब देते ! फिर उन्हें हाथी दिखाई दे जाता। उसके पास जाकर वह पूछते, "हे मतवाले हाथी ! तुम दूर तक देख सकते हो। क्या तुमने सदा जवान रहनेवाली उर्वशी को देखा है। तुम मेरे समान बलवान हो। मैं राजाओं का स्वामी हूं। तुम गजों के स्वामी हो। तुम दिन-रात अपना दान यानी मद बहाया करते हो, मेरे यहां भी दिन-रात दान दिया जाता है। तुमसे मुझे

बड़ा स्नेह हो गया है। अच्छा, सुखी रहो। हम तो जा रहे हैं।"

और फिर उनको दिखाई दे जाता एक सुहावना पर्वत। उसीसे पूछने लगते, "हे पर्वतों के स्वामी! क्या तुमने मुझसे बिछुड़ी हुई सुंदरी उर्वशी को कहीं इस वन में देखा है। उन्हें ऐसा लगता जैसे पर्वतराज ने कुछ उत्तर दिया है। उन्हें खुशी होती; पर तभी मालूम होता कि वह पर्वतराज का उत्तर नहीं था, बल्कि पहाड़ की गुफा से टकराकर निकलनेवाली उन्हींके शब्दों की गूंज थी।

यहां से हटे तो नदी दिखाई दे गई। उसीसे उर्वशी की तुलना करने लगे। लेकिन जब वह भी कुछ नहीं बोली तो हिरन के पास जा पहुंचे। उसने भी उनकी बातें अनसुनी करके दूसरी ओर मुंह फेर लिया। ठीक ही है, जब खोटे दिन आते हैं तो सभी दुरदुराने लगते हैं। लेकिन तभी उन्होंने लाल अशोक के पेड़ को देखा। उससे भी वही प्रश्न किया और जब वह हवा से हिलने लगा तो समझे कि वह मना कर रहा है—उसने उर्वशी को नहीं देखा।

इसी प्रकार पागलों की तरह प्रलाप करते हुए जब

वह यहां से मुड़े तो उन्हें एक पत्थर की दरार में लाल मणि-सा कुछ दिखाई दिया। सोचने लगे कि न तो यह शेर से मारे हुए हाथी का मांस हो सकता है और न आग की चिनगारी। मांस इतना नहीं चमकता और चूंकि अभी भारी वर्षा होकर चुकी है, इसलिए आग के रहने का कोई सवाल ही नहीं उठता। यह तो अवश्य लाल अशोक के समान लाल मणि है। इसे देख-कर मेरा मन ललचा रहा है।

यह सोचकर वह आगे बढ़े और मणि को निकाल लिया। लेकिन फिर ध्यान आया कि जब उर्वशी ही नहीं है तो मणि का क्या होगा! इसलिए उसे गिरा दिया। उसी समय नेपथ्य में से किसीकी वाणी सुनाई दी, "वत्स! इसे ले लो, ले लो, यह प्रियजनों को मिलानेवाली है और पार्वती के चरणों की लाली से बनी है। जो इसे अपने पास रखता है उसे वह शीघ्र ही प्रिय से मिलवा देती है।"

यह वाणी सुनकर महाराज चकित रह गये। उन्हें जान पड़ा कि मानो किसी मुनि ने यह कृपा की है। उन्होंने उस अज्ञात मुनि को धन्यवाद दिया और मणि को उठा लिया। इसी समय उनकी दृष्टि बिना

फूलवाली एक लता पर पड़ी। न जाने क्यों उनका मन उछल पड़ा। उन्हें सुख मिला। वह उन्हें उर्वशी के समान दिखाई पड़ी और जैसे ही उन्होंने उसे छुआ, उर्वशी सचमुच वहां आगई; पर उनकी आंखें बंद थीं। उसी तरह कुछ देर बोलते रहे। जब आंखें खोलीं और उर्वशी को देखा तो वह मूर्च्छित होकर गिर पड़े। उर्वशी भी रोने लगी और उन्हें धीरज बंधाने लगी। कुछ देर बाद जब महाराज की मूर्च्छा दूर हुई तो उन्हें कार्त्तिकेय के श्राप के कारण उर्वशी के लता बन जाने के रहस्य का पता लगा। यह भी पता लगा कि पार्वती के चरणों की लाली से पैदा होनेवाली मणि से ही इसे शाप से मुक्ति मिली है।

उर्वशी उनसे बार-बार क्षमा मांगने लगी, "मुझे क्षमा कर दीजिए, क्योंकि मैंने ही क्रोध करके आपको इतना कष्ट पहुंचाया।" महाराज बोले, "कल्याणी ! तुम क्षमा क्यों मांगती हो ! तुम्हें देखते ही मेरी आत्मा तक प्रसन्न होगई है।" और फिर उन्होंने उसे वह मणि दिखाई, जिसके कारण उसका श्राप दूर होगया था। उर्वशी ने उस मणि को सिर पर धारण किया तो उसके प्रकाश में उसका मुख अरुण-किरणों से चमकते हुए कमल के समान सुहावना लगने लगा।

H.000700
GANDHI SMARAKA GRANTHALAYA
BANGALORE-1.
D15,9 D40
152w3N57I

इसी समय उर्वशी ने याद दिलाया, "हे प्रिय बोलनेवाले ! आप बहुत दिनों से प्रतिष्ठान पुरी से बाहर हैं। आपकी प्रजा इसके लिए मुझे कोस रही होगी। इसलिए आइए अब लौट चलें।

महाराज ने उत्तर दिया, "जैसा तुम चाहो।" और लौट पड़े।

: ५ :

नंदन वन आदि देवताओं के वनों में घूमकर महाराज पुरुरवा फिर अपने नगर में लौट आये। नागरिकों ने उनका खूब स्वागत-सत्कार किया और वह प्रसन्न होकर राज करने लगे। संतान को छोड़ कर उन्हे अब और किसी बात की कमी नहीं थी। इन्हीं दिनों एक दिन एक सेवक महारानी के माथे की मणि ताड़ की पिटारी में रखे ला रहा था कि इतने में एक गिद्ध झपटा और उसे मांस का टुकड़ा समझकर उठा-कर उड़ गया। यह समाचार पाकर महाराज आसन छोड़कर दौड़ पड़े। पक्षी अभी दिखाई दे रहा था। उन्होंने अपना धनुषवाण लाने की आज्ञा दी।

लेकिन जबतक धनुष आया तबतक वह पक्षी

बाण की पहुंच से बाहर निकल चुका था और ऐसा लगने लगा था मानो रात के समय घने बादलों के दल के साथ मंगल तारा चमक रहा हो। यह देखकर महाराज ने नगर में यह घोषणा करवाने की आज्ञा दी कि जब यह चोर पक्षी संध्या को अपने घोंसले में पहुंचे तो इसकी खोज की जाय।

यह वही मणि थी, जिसके कारण उर्वशी और महाराज का मिलन हुआ था। इसलिए महाराज उसका विशेष आदर करते थे। वह यह बात विदूषक को बता ही रहे थे कि कंचुकी ने आकर महाराज की जय-जयकार की। उसने कहा, "आपके क्रोध ने बाण बनकर इस पक्षी को मार डाला और इस मणि के साथ यह धरती पर गिर पड़ा।"

महाराज ने उस मणि को आग में शुद्ध करके पेटी में रखने की आज्ञा दी और यह जानने के लिए कि वाण किसका है उसपर अंकित नाम पढ़ने लगे। पढ़कर वह सोच में पड़ गये। उसपर लिखा हुआ था—यह वाण पुरुरवा और उर्वशी के धनुर्धारी पुत्र का है। उसका नाम आयु है और वह शत्रुओं के प्राण खींचनेवाला है।

विदूषक यह सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने

महाराज को बधाई दी; पर वह तो कुछ समझ ही नहीं पा रहे थे। यह पुत्र कैसे पैदा हुआ। वह तो कुछ जानते ही नहीं। शायद उर्वशी ने दैवी-शक्ति से इस बात को छिपा रखा हो। पर उसने पुत्र को क्यों छिपा रखा ?

वह इसी उधेड़बुन में थे कि च्यवन ऋषि के आश्रम से एक कुमार को लिये किसी तपस्विनी के आने का समाचार मिला। महाराज ने उन्हें वहीं बुला भेजा और कुमार को देखते ही उनकी आंखें भर आईं। हृदय में प्रेम उमड़ पड़ा और उनका मन करने लगा कि उसे कसकर छाती से लगा ले। पर ऊपर से वह शांत ही बने रहे। उन्होंने तापसी को प्रणाम किया आशीर्वाद देकर तापसी ने कुमार से कहा, "बेटा, अपने पिताजी को प्रणाम करो।"

कुमार ने ऐसा ही किया। महाराज ने उसे गद्-गद् होकर आशीर्वाद दिया और तब तापसी बोली, "महाराज। जब यह पुत्र पैदा हुआ तभी कुछ सोच-कर उर्वशी इसे मेरे पास छोड़ आई थी। क्षत्रिय-कुमार के जितने संस्कार होते हैं वे सब भगवान् च्यवन ने करा दिये हैं। विद्याध्यन के बाद धनुष चलाना भी सिखा दिया गया है; लेकिन आज जब यह फूल और

समिधादि लाने के लिए ऋषिकुमारों के साथ जा रहा था तो इसने आश्रम के नियमों के विरुद्ध काम कर डाला।"

विदूषक ने घबराकर पूछा, "क्या कर डाला ?"

तापसी बोली, "एक गिद्ध मांस का टुकड़ा लिये हुए पेड़ पर बैठा था। उसपर लक्ष्य बांधकर इसने बाण चला दिया। जब भगवान च्यवन ने यह सुना तो उन्होंने उर्वशी की यह धरोहर उसे सौंप आने की आज्ञा दी। इसीलिए मैं उर्वशी से मिलने आई हूं।"

महाराज ने तुरंत उर्वशी को बुला भेजा और पुत्र को गले से लगाकर प्यार करने लगे। उर्वशी ने आते ही दूर से उसे देखा तो सोच में पड़ गई; पर तापसी को उसने पहचान लिया। अब तो वह सबकुछ समझ गई। पिता के कहने पर जब पुत्र ने माता को प्रणाम किया तो उसने पुत्र को छाती से चिपका लिया। तापसी ने उसके स्वामी के सामने उसका पुत्र उसे सौंपते हुए कहा, "ठीक से पढ़-लिखकर अब यह कुमार कवच धारण करने योग्य हो गया है, इसलिए तुम्हारे स्वामी के सामने ही तुम्हारी धरोहर तुम्हें सौंप रही हूं। और अब जाना भी चाहती हूं। आश्रम का बहुत-सा काम रुका पड़ा है।"

जाते समय कुमार भी साथ जाने के लिए मचल उठा; पर जब सबने समझाया तो वह आश्रम-जैसी सरलता से तापसी से बोला, "तो आप बड़े-बड़े पंखों वाले मेरे उस मणिकंठक नाम के मोर को भेज देना। वह मेरी गोद में सोकर मेरे हाथों से अपना सिर खुजलाये जाने का आनंद लिया करता था।"

तापसी हँस पड़ी और ऐसा ही करने का वचन देकर चली गई। महाराज पुत्र पाकर बड़े प्रसन्न हुए परंतु उर्वशी रोने लगी। यह देखकर महाराज घबरा उठे और इस विषाद का कारण पूछने लगे। उर्वशी बोली, "बहुत दिन हुए, आपसे प्रेम करने पर भरत मुनि ने मुझे शाप दिया था। उस शाप से मैं बहुत घबरा गई थी तब देवराज इंद्र ने मुझे आज्ञा दी थी कि जब हमारे प्यारे मित्र राजर्षि तुमसे उत्पन्न हुए पुत्र का मुंह देख लें तब तुम फिर मेरे पास लौट आना। आपसे विछोह होने के डर से ही मैं इस कुमार को पैदा होते ही च्यवन ऋषि के आश्रम में पढ़ाने-लिखाने के बहाने छोड़ आई थी। आज उन्होंने इसे पिता की सेवा करने के योग्य समझकर लौटा दिया है। बस आज तक ही मैं महाराज के साथ रह सकती थी।"

यह कथा सुनकर सबको बड़ा दुःख हुआ। महाराज

तो मूर्च्छित होगये। जब जागे तो उन्होंने तुरंत ही पुत्र को राज्य सौंपकर तपोवन में जाकर रहने की इच्छा प्रगट की। लेकिन इसी समय नारद मुनि ने वहां प्रवेश किया। आकाश से उतरते हुए पीली जटावाले, कंधे पर चंद्रमा की कला के समान उजला जनेऊ और गले में मोतियों की माला पहने, वह ऐसे लगते थे जैसे सुनहरी शाखावाला कोई चलता-फिरता कल्पवृक्ष चला आ रहा हो। पूजा-अभिवादन के बाद उन्होंने कहा कि मैं देवराज इंद्र का संदेशा लेकर आया हूं। वह अपनी दैवी शक्ति से सबके मन की बातें जाननेवाले हैं। उन्होंने जब देखा कि आप वन जाने की तैयारी कर रहे हैं तो उन्होंने कहलाया है—"तीनों कालों को जाननेवाले मुनियों ने भविष्यवाणी की है कि देवताओं और दानवों में भयंकर युद्ध होनेवाला है। युद्ध-विद्या में कुशल आप हम लोगों की सदा सहायता करते ही रहें इसलिए आप शस्त्र न छोड़ें। उर्वशी जीवनभर आपके साथ रहेगी।"

देवराज इंद्र का यह संदेश सुनकर उर्वशी और पुरुरवा दोनों बहुत प्रसन्न हुए। इंद्र ने कुमार आयु के युवराज बनने के उत्सव के लिए भी सामग्री भेजी थी। उसीसे रंभा ने आयु का अभिषेक किया। अभिषेक

MAHATMA GANDHI MEMORIAL LIBRARY

5, Kumara Park (East), Bangalore-1

DATE LABLE

CL. No 015.2 D40 152W3N57'1 Accn. No H.000700

This book ought to be returned on or beofre the date last marked below, or fines will be incurred.

Due Date	Ticket No.	Inls.	Due Date	Ticket No.	Inls.

BANGALORE-1.

GANDHI SMARAKA GRANTHALAYA
DATE.....
ACC. NO.....
CALL NO.....

Mahatma Gandhi Memorial Library
5, Kumara Park (East), Bangalore-1

BOOK CARD

CL No. 015,2D40 152W3N57;1 Acc. No. H.000700

Author. KALIDASA ( ) ( )

Title Vikramorvasi

Ticket No.	Issue Date	Return Date	Ticket No.	Issue Date	Return Date

015,2D40
152W3N57;1
H.000700

'संस्कृत-साहित्य-सौरभ' की पुस्तकें

१. कादम्बरी
२. उत्तररामचरित
३. वेणी-संहार
४. शकुन्तला
५. मृच्छकटिक
६. मुद्राराक्षस
७. नलोदय
८. रघुवंश
९. नागानन्द
१०. मालविकाग्निमित्र
११. स्वप्नवासवदत्ता
१२. हर्ष-चरित
१३. किरातार्जुनीय
१४. दशकुमार-चरित : भाग १
१५. दशकुमार-चरित : भाग २
१६. विक्रमोर्वशी
१७. मेघदूत
१८. मालतीमाधव
१९. शिशुपालवध
२०. बुद्ध-चरित
२१. कुमारसंभव
२२. महावीर-चरित
२३. रत्नावली
२४. पंचरात्र
२५. प्रियदर्शिका
२६. वासवदत्ता
२७. रावणवध
२८. सौंदरनंद

मूल्य प्रत्येक का छः आना

१६

छः आना